ह म स फ र

सत्यजीत रे

बारिन भौमिक 'डी' कम्पाटमट में चढ़ा और उसने अपनी अटैची सीट के नीचे घुसा दी। सफर में इसे खोलने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन दूसरा झोला कहीं पास में रखना ठीक रहेगा। उसमें कुछ ज़रूरी चीज़ें – कंघी, दांत का बुश, दाढ़ी बनाने का सामान, जेम्स हैडली चेज़ की एक किताब और कुछ छुट-पुट चीज़ें जिनमें उसके गले की दवाई भी थी। अगर इस ठण्डे, वातानुकूलित डिब्बे के लंबे सफर से गला बैठ गया, तो वह कल

गा नहीं पाएगा। तपाक से उसने एक गोली अपने मुंह में डाली और अपना झोला खिड़की के पास की मेज़ पर रख दिया।

यह दिल्ली जाने वाली ट्रेन थी। गाड़ी छूटने में सिर्फ सात मिनट बचे थे; पर अन्य यात्रियों का नामोनिशां भी नहीं था। क्या वह सारा रास्ता इसी तरह अकेले सफर कर पाएगा? यह तो ऐशो-आराम की हद होगी। इस ख्याल से ही खुश होकर वो एक गीत गुनगुनाने लगा।

उसने झांककर खिड़की से बाहर प्लेटफॉर्म पर खड़ी भीड़ को देखा। दो आदमी बार-बार उसकी ओर देख रहे थे। शायद वे उसे पहचान गए थे। यह कोई नई बात नहीं थी, अब लोग उसे अक्सर पहचान लेते थे। न सिर्फ उसकी आवाज़ पहचानी जाती थी, बल्कि उसकी शक्ल भी। उसे एक महीने में कम-से-कम आधा दर्जन बार शो करने पड़ते थे। आज रात बारिन भौमिक को सुनिएगा – वो कुछ नज़रूल के लिखे और कुछ एकदम नए, दोनों ही तरह के गीत गाने वाला था। पैसा और नाम, दोनों की बारिन भौमिक के पास कोई कमी नहीं थी।

लेकिन यह सिर्फ पिछले पांच सालों में हुआ था। उससे पहले उसे काफी संघर्ष करना पड़ा। एक अच्छा गायक होना ही काफी नहीं है बल्कि सही अवसरों और अन्य लोगों की मदद की भी ज़रूरत होती है। यह 1963 में हुआ जब भोला दा – भोला बैनर्जी ने उसे उनीश पल्ली के पूजा पंडाल में गाने के लिए आमंत्रित किया। उस दिन से बारिन भौमिक ने पीछे मुड़कर नहीं देखा था।

बल्कि अब वह बंगाल एसोसिएशन के निमंत्रण पर उनके जुबली कार्यक्रम में गाने के लिए दिल्ली जा रहा था। वो लोग उसकी यात्रा के लिए फर्स्ट क्लास का भाड़ा दे रहे थे और दिल्ली में उसके रहने की व्यवस्था भी करने का वायदा किया था। वो दिल्ली में कुछ दिन बिताना चाहता था। वहां से फिर आगरा, फतेहपुर सीकरी और फिर एक हफ्ते बाद वापस कलकत्ता। उसके बाद पूजा का समय आ जाएगा और ज़िंदगी बेहद व्यस्त हो जाएगी।

"खाना खाएंगे, साहब. . . ?" दरवाज़े से आवाज़ आई।

"क्या है खाने में?"

"आप मांसाहारी हैं, न? आप भारतीय और अंग्रेज़ी खाने में से चुन सकते हैं। अगर आप भारतीय चाहते हैं, तो हमारे पास. . . ."

बारिन ने खाने का बताकर अभी अपनी 'थ्री कासल' सिगरेट जलाई ही थी कि एक और आदमी वहां आकर बैठ गया। उसी समय ट्रेन भी चल पड़ी।

बारिन ने उसे देखा। वह कुछ पहचाना-सा लग रहा था। कहीं कोई परिचित तो नहीं था? बारिन थोड़ा मुस्कुराया, पर उसकी मुस्कुराहट तुरंत गायब हो गई। उस आदमी की तरफ से कोई जवाब नहीं था। मुझे कहीं गलतफहमी तो नहीं हो गई? हे राम, कितनी अटपटी स्थिति होगी। मुझे क्या ज़रूरत थी बेवकूफों की तरह मुस्कुराने की? ऐसा उसके साथ एक बार पहले भी हुआ था।

उसने एक आदमी की पीठ पर ज़ोर से धौंस जमाया और 'हेलो! त्रिदीब दा! कैसे हो?' कहा था। फिर पता चला कि यह त्रिदीब दा है ही नहीं। इस किस्से ने उसे कई दिन तक परेशान किया था। भगवान भी हमें शर्मिंदा करने के लिए क्या-क्या जाल बिछाता है।

बारिन भौमिक ने उस आदमी को फिर से देखा। उसने अपनी चप्पल उतारकर पांव पसार लिए थे, और अब एक पत्रिका के पन्ने पलट रहा था। एक बार फिर बारिन को लगा कि उसने इस आदमी को पहले कहीं देखा ज़रूर है और उसके साथ काफी समय भी बिताया है। लेकिन कब? और कहां? इस आदमी की मोटी भौवें थीं, पतली-सी मूंछ थी, चमकते हुए बाल, और माथे के बीचों-बीच एक मस्सा। हां, इस चेहरे को वह जानता था। क्या इससे तब मुलाकात हुई थी जब वह सेंट्रल टेलीग्राफ में काम करता था, लेकिन यह परिचय एक-तरफा तो नहीं हो सकता? उसके साथी ने तो पहचानने का कोई संकेत नहीं दिया था।

"आपका खाना, साहब?" फिर वही कंडक्टर आया। वो एक मोटा-तगड़ा, खुशमिज़ाज बंदा था।

उस आदमी ने कहा, "खाने का बाद में सोचेंगे। पहले एक प्याली चाय मिलेगी?"

"ज़रूर, क्यों नहीं।"

"केवल चाय। मुझे काली चाय ही पसंद है।"

बस! अब तो बारिन भौमिक को एकदम अजीब-सा लगने लगा। ऐसा लग रहा था मानों दिल को पंख लग गए हों और वो उड़कर फेफड़ों में आ अटका हो। न सिर्फ उस आदमी की आवाज़, पर जो वो खास ज़ोर देकर कह रहा था – काली चाय। उससे बारिन के सारे शक दूर हो गए। सब यादें वापस लौट आईं।

***

बारिन ने उस आदमी को देखा था। और अजीब बात यह थी – ऐसी ही दिल्ली जाने वाली एक ट्रेन के वातानुकूलित डिब्बे में। उस समय वो खुद पटना जा रहा था, अपनी बहन शिप्रा की शादी के लिए। चलने से

तीन दिन पहले उसने घोड़ों की रेस पर पैसे लगाकर सात हज़ार रुपए जीते थे; इसलिए फर्स्ट क्लास में सफर कर रहा था। यह नौ साल पहले की बात थी, 1964 में, उसके मशहूर गायक बनने से काफी पहले। उस आदमी का नाम याद नहीं आ रहा था। शायद 'च' से कुछ था। चक्रवर्ती? चटर्जी? चौधरी?

कंडक्टर चला गया। बारिन को लगा कि अब वो उस आदमी के सामने नहीं बैठ सकता। वो बाहर जाकर गलियारे में खड़ा हो गया, अपने हमसफर से दूर। संयोग तो होता है ज़िंदगी में, पर इस संयोग पर उसे यकीन नहीं हो रहा था।

पर क्या 'च' ने उसे पहचान लिया था? अगर नहीं, तो इसके दो कारण हो सकते थे। या तो उसकी याद्दाश्त कमज़ोर है या फिर इन नौ सालों में बारिन की शक्ल में काफी बदलाव आ गया है। खिड़की के बाहर झांकते हुए वो सोचने लगा कि ये बदलाव क्या हो सकते हैं। मसलन उसका वज़न

काफी बढ़ गया था, इसलिए चेहरा भी शायद भरा-भरा लग रहा होगा। उस समय वो चश्मा नहीं पहनता था, अब पहनने लगा है। और अब मूंछें भी नहीं हैं। मूंछें कब साफ की थीं? अरे हां, बहुत पहले की बात नहीं है। वो हज़रा रोड पर एक सलून में गया था। वहां का नाई नया और नौसिखिया था। दाढ़ी बनाते समय उससे एक तरफ की मूंछें ज्यादा कट गईं और उनका संतुलन बिगड़ गया। बारिन को पहले तो पता ही नहीं चला। फिर जब दफ्तर में लिफ्ट वाले बातूनी सुखदेव से लेकर बुजुर्ग मुनीम, केशव बाबू तक सभी लोग कहने लगे, तो उसने मूंछें ही कटवा लीं। यह चार साल पहले की बात थी। तो मूंछें गईं, उसका चेहरा भी चौड़ा हो गया था और उसे चश्मा भी लग गया था। यह सोचकर उसे थोड़ी सांत्वना मिली और वो अपने डिब्बे में लौट गया।

बेयरा चाय से भरा फ्लास्क लाया और उसे 'च' के सामने रख दिया। बारिन को भी कुछ पीने की इच्छा! पर उसने अपना मुंह खोलने की नहीं की। अगर 'च' ने उसकी आवाज़ पहचान ली तो?

बारिन सोचना भी नहीं चाह रहा था कि अगर 'च' ने उसे पहचान लिया तो वो उस समय क्या कर बैठेगा! पर फिर, यह सब इस बात पर भी निर्भर करता है कि वो आदमी कैसा है। यदि वह अनिमेश दा की तरह है, तो फिक्र की कोई बात नहीं थी। एक बार, बस में, अनिमेश को लगा कि कोई उनकी जेब काटने की कोशिश कर रहा है। पर शोर मचाने में उन्हें शर्म आ रही थी इसलिए उन्होंने चुपचाप अपना बटुआ दे दिया। उसमें 10-10 रुपए के चार नए नोट थे। बाद में उन्होंने अपने परिवार को बताया, "एक भरी हुई बस में बवाल मचाना जिससे सब मुझे ताकने लगते – नहीं, यह तो मैं नहीं होने दे सकता था।"

क्या यह आदमी भी कुछ-कुछ वैसा ही था? शायद नहीं। अनिमेश दा जैसे लोग मुश्किल से मिलते हैं आजकल। और फिर, इसकी सूरत से भी निश्चितता नहीं हो रही थी। उसकी हर बात – घनी भौंवें, चपटी नाक और बाहर निकला हुआ जबड़ा – सबसे यही लग रहा था कि वो अपने हाथ बारिन की गर्दन पर कसने से बिल्कुल नहीं झिझकेगा और पूछेगा, "क्या तुम वही आदमी नहीं जिसने 1964 में मेरी घड़ी चुराई थी? कमीने! मैं नौ साल से तुम्हें ढूंढ रहा हूं। आज मैं तुझे . . . "

लेकिन बारिन ने आगे नहीं सोचा। इस वातानुकूलित डिब्बे में भी उसके माथे पर पसीना चमकने लगा था। बारिन अपनी बर्थ पर पसर गया और बांए हाथ से आंखें ढक लीं। अक्सर आंखों से ही इंसान पहचाना जाता है।

'च' भी अपनी आंखों की वजह से पहचाना गया था।

***

अब उसे पूरी घटना बहुत स्पष्ट रूप से याद आ गई थी। बात सिर्फ 'च' की घड़ी चुराने की नहीं थी। उसने बचपन से जितनी भी चीज़ें चुराईं, वे सभी उसे अच्छी तरह याद थीं। कुछ बिल्कुल मामूली चीज़ें – जैसे पैन (मुकुल मामा का) या फिर एक सस्ता सा सूक्ष्मदर्शी (उसकी कक्षा में पढ़ने वाले अक्षय का) या 'कफ-लिंक्स' का जोड़ा, जो छेनी दा का था और बारिन के किसी काम का नहीं था। उसने उन्हें एक भी बार नहीं पहना। सभी चीज़ें चुराने के पीछे एक ही कारण था कि वे पास में रखी होती थीं और किसी और की थीं।

बारह और पच्चीस साल के बीच बारिन ने कम-से-कम पचास चीज़ें चुराईं और अपने घर में जमा कर ली थीं। इसे चोरी के अलावा क्या कहा जा सकता था? उसमें और एक चोर में यही फर्क था कि चोर जीवन-यापन के लिए चोरी करता है और बारिन आदत से मजबूर होकर। किसी ने कभी उस पर शक नहीं किया था, इसलिए वो कभी पकड़ा भी नहीं गया। बारिन को मालूम था कि यह आदत, बेवजह चीज़ें उठाने की, एक तरह की बीमारी थी। एक बार उसने अपने एक डॉक्टर मित्र से इसका तकनीकी नाम भी सीखा था पर अभी उसे याद नहीं आ रहा था।

पर 'च' की घड़ी के बाद उसने कोई सामान नहीं उठाया था। पिछले नौ सालों में उसे कभी इस बात की इच्छा भी नहीं हुई। उसे पता था कि वो अब इस बीमारी से मुक्त हो चुका है।

'च' की घड़ी चुराने और बाकी चोरियों में प्रमुख अंतर था कि वो घड़ी उसे भा गई थी। स्विटज़रलैंड की बनी एक खूबसूरत घड़ी थी वो; एक नीले रंग के डिब्बे में रखी, जिसे खोलते ही घड़ी एकदम सीधी खड़ी हो जाती थी। उसका अलार्म इतना मधुर था कि सुनकर उठ जाने को जी करे। बारिन ने उस घड़ी को इन नौ सालों में लगातार इस्तेमाल किया, जहां भी गया साथ ले गया। आज भी वो घड़ी मेज़ पर रखे उसके झोले की गहराइयों में दबी हुई थी।

"आप कहां तक जा रहे हैं?"

बारिन चौंक के उठ गया। वह आदमी उसी से बात कर रहा था!

"दिल्ली।"

"जी?"

"दिल्ली।"

पहली बार बारिन ने आवाज़ बदलने के चक्कर में इतने धीरे जवाब दिया कि उस आदमी को सुनाई नहीं दिया।

"क्या आपको यहां ठंड लग रही है? इसलिए आपकी आवाज़ भारी हो

रही है?"

"न-नहीं।"

"ऐसा हो सकता है। अगर धूल-मिट्टी न होती तो मैं तो स्लीपर क्लास में ही सफर करता।"

बारिन ने कुछ नहीं कहा। वो 'च' से नज़र नहीं मिलाना चाहता था, लेकिन दूसरी ओर उसकी अपनी जिज्ञासा उसे मजबूर कर रही थी। क्या 'च' ने उसे पहचान लिया था? नहीं, उसका बर्ताव काफी सामान्य था।

क्या वो जानबूझकर अंजान बन रहा था? पर यह पता लगाने का कोई तरीका नहीं था। आखिर बारिन उसे ठीक से जानता भी तो नहीं था। पिछली बार उसे सिर्फ इतना पता चला था कि उसे काली चाय पसंद है और वो हर स्टेशन पर उतरकर कुछ खाने का सामान ज़रूर खरीदता है। उसकी इस आदत की वजह से बारिन को बहुत-सी स्वादिष्ट चीज़ें खाने का मौका मिला था।

इसके अलावा बारिन ने 'च' की एक और बात पर गौर किया था, जो घड़ी से सीधा संबंध रखती थी।

वे अमृतसर मेल से यात्रा कर रहे थे। वो सुबह पांच बजे पटना पहुंचती थी। ट्रेन के कंडक्टर ने आकर बारिन को साढ़े चार बजे जगाया। 'च' भी आधा जगा हुआ था जबकि उसे दिल्ली जाना था। पटना पहुंचने से तीन मिनट पहले ज़ोर से ब्रेक लगा और ट्रेन रुक गई। क्या कारण हो सकता था? कुछ लोग टॉर्च लिए नीचे घूम रहे थे। मामला कुछ गंभीर नज़र आ रहा था। आखिर में एक गार्ड आया और उसने बताया कि एक बूढ़ा आदमी पटरी पार करता हुआ इंजन के नीचे आ गया था। जैसे ही उसे निकाल लेंगे, ट्रेन चल पड़ेगी।

'च' यह बात सुनकर उत्सुकतावश झट नीचे उतर गया, पायजामा-कुर्ता पहने हुए ही। इसी दौरान बारिन ने 'च' के झोले में से घड़ी निकाली थी। रात को सोने से पहले उसने 'च' को उसमें चाबी भरते देखा था और उसे लालच आ गया था। पर घड़ी उठाने का मौका मिलना मुश्किल था सो उसने खुद को समझा लिया था। लेकिन जैसे ही यह अनायास मौका मिला तो बारिन खुद को रोक नहीं पाया। उस वक्त उसे ऊपर सो रहे आदमी का भी डर नहीं रहा। उसने 'च' के झोले में हाथ डालकर घड़ी निकाली और उसे अपने झोले में डाल लिया। ऐसा करने में उसे 15-20 सैकेंड ही लगे। 'च' करीब पांच मिनट बाद वापस आया।

"बहुत बुरा हुआ! कोई भिखारी था। उसका सिर धड़ से अलग हो गया है। मुझे तो समझ नहीं आता कि इंजन के सामने जाली लगी होने के बावजूद भी कोई गाड़ी के नीचे कैसे आ सकता है। उसका तो काम ही है पटरी पर

पड़ी हर चीज़ को किनारे फेंक देना।"

बारिन पटना में सुरक्षित उतर गया और वहां उसे उसके अंकल मिले। उनकी गाड़ी में बैठते ही उसे जो अटपटा एहसास हो रहा था वो भी गायब हो गया। उसके मन ने उसे समझा दिया कि यह कहानी यहीं खत्म हो गई है। अब उसे कोई नहीं पकड़ सकता। 'च' का दुबारा मिलना लगभग नामुमकिन था।

***

लेकिन किसे पता था कि एक दिन, कई साल बाद, संयोगवश वे दुबारा मिलेंगे? 'ऐसे संयोग से तो कोई भी अंधविश्वासी हो जाए', बारिन ने सोचा।

"आप दिल्ली में रहते हैं? या कलकत्ता में?" 'च' ने पूछा।

बारिन को याद आया कि पिछली बार भी उसने उससे बहुत-से सवाल पूछे थे। बारिन को ऐसे लोगों से नफरत थी जो ज़्यादा ही दोस्ताना बर्ताव करने लगते थे।

"कलकत्ता।" बारिन ने कहा। अरे, यह क्या किया। उसने अपनी सामान्य आवाज़ में जवाब दे दिया। उसे चौकन्ना रहना होगा।

हे भगवान! यह आदमी मुझे इस तरह घूर क्यों रहा है? मुझ में रुचि लेने का क्या कारण हो सकता है? बारिन की नब्ज़ फिर तेज़ी से चलने लगी।

"क्या आपकी तस्वीर हाल ही में किसी अखबार में छपी है?"

बारिन को लगा उसे सच न बताना

पागलपन होगा। ट्रेन में और भी बंगाली लोग थे जो उसे पहचान सकते थे। उसे अपनी असलियत बताने में कोई नुकसान नहीं था। बल्कि अगर वह बता दे कि वह एक प्रसिद्ध गायक है, तो 'च' के लिए उसे अपनी घड़ी चुराने वाला मानना मुश्किल हो जाएगा।

"आपने मेरी तस्वीर कहां देखी?" बारिन ने वापस सवाल किया।

"क्या आप गाते हैं?" एक और प्रश्न आया।

"हां, थोड़ा-बहुत।"

'आपका नाम. . . ?"

"बारिन्द्रनाथ भौमिक।"

'आ . . . हा, अच्छा। बारिन भौमिक। तभी आपका चेहरा पहचाना लग रहा था। आप रेडियो पर गाते हैं, है न?"

"जी।"

"मेरी पत्नी आपका गाना बहुत पसंद करती है। क्या आप दिल्ली किसी शो में गाने के लिए जा रहे हैं?"

"जी।"

बारिन ने तय किया कि उसे ज़्यादा जानकारी नहीं देनी चाहिए। अगर 'हां' या 'ना' से काम चलता है तो और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

"मैं दिल्ली में किसी भौमिक को जानता हूं। वो वित्त मंत्रालय में हैं – नीतिश भौमिक – क्या वो आपके रिश्तेदार लगते हैं?"

वास्तव में, नीतिश बारिन का चचेरा भाई था। वो अपने सख्त अनुशासन के लिए प्रसिद्ध था। करीबी रिश्तेदार था, पर व्यक्तिगत रूप से बारिन की उससे खास दोस्ती नहीं थी।

"नहीं। मैं उन्हें नहीं जानता।"

बारिन ने यहां झूठ बोला। काश, यह आदमी सवाल पूछना बंद कर दे। वो इतना कुछ क्यों जानना चाहता था?

शुक्र है, खाना आ गया! संभवतः अब तो इसके सवालों की बौछार बंद होगी, कम-से-कम कुछ देर के लिए।

ऐसा ही हुआ। 'च' को खाना पसंद था। वो ध्यान से, चुपचाप खाना खाने लगा। बारिन अब थोड़ा आराम से बैठ गया पर फिर भी पूरी तरह तसल्ली नहीं हुई। उन्हें अब 20 घंटे एक साथ गुज़ारने थे। याद्दाश्त इतनी अजीब चीज़ है। कौन कह सकता है किस चीज़ से – एक नज़र, एक शब्द, एक संकेत से कोई पुरानी भूली हुई याद वापस लौट आए, ताज़ा हो जाए?

मसलन, काली चाय। बारिन को विश्वास था कि अगर 'च' वो दो शब्द नहीं कहता, तो वो 'च' को पहचान नहीं पाता। अगर 'च' भी उसकी किसी बात से उसे पहचान ले तो?

सबसे अच्छा हो, अगर वो न कुछ कहे, न कुछ करे। किताब में अपना मुंह छुपाते हुए, बारिन बर्थ पर लेट गया। जब उसने पहला अध्याय पढ़ लिया तो धीरे से मुंह घुमाकर 'च' की तरफ देखा। वो शायद सो रहा था। उसके हाथ में पकड़ी पत्रिका, 'इलस्ट्रेटेड वीकली' नीचे गिर गई थी।

उसकी आंखों पर तो हाथ रखा हुआ था पर छाती के गिरने उठने से लग रहा था कि वो गहरी नींद में है। बारिन खिड़की के बाहर देखने लगा। खुले मैदान, पेड़, छोटी-छोटी झोंपड़ियां, बिहार की बंजर ज़मीन का नज़ारा उसकी आंखों के सामने से गुज़रा। कांच की खिड़की में से पहियों की आवाज़ बहुत धीमी आ रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे कहीं दूर ढोल बज रहे हों – धा...धिनक...ना... धिनक... धा...धिनक...ना...धिनक...।

इसके साथ अब एक और आवाज़ मिल गई: 'च' के खर्राटों की।

बारिन को अब थोड़ी शांति हुई। वो नज़रूल का एक गीत गुनगुनाने लगा। उसकी आवाज़ अच्छी ही लग रही थी। उसने फिर अपना गला साफ किया और थोड़ी ज़ोर से गाने लगा। लेकिन उसे तुरन्त रुक जाना पड़ा।

डिब्बे में कुछ और आवाज़ भी आ रही थी। बारिन चौंककर चुप हो गया। यह उसकी घड़ी की आवाज़ थी। उस स्विस घड़ी का अलार्म किसी वजह से बज उठा था; और अब लगातार बज रहा था। बारिन से हाथ-पांव भी नहीं हिलाए गए, डर के मारे मानों अकड़ गए हों। वो 'च' को एकटक देखता रहा। 'च' ने बांह हिलाई। बारिन सकते में आ गया।

'च' अब उठ चुका था। उसने आंखों से हाथ हटाया। 'क्या गिलास की आवाज़ है? क्या आप उसे हटा सकते हैं? दीवार से टकरा रहा है शायद।'

जैसे ही बारिन ने गिलास को हटाया आवाज़ भी बंद हो गई। गिलास को मेज़ पर रखने से पहले बारिन ने पानी पी लिया। उसके गले को राहत मिली, पर वो दोबारा गाने के मूड में कतई नहीं था।

हज़ारीबाग रोड पहुंचने से थोड़ा पहले चाय आई। दो कप गरम चाय और अन्य सवालों की अनुपस्थिति में बारिन फिर थोड़ा शांत हुआ। उसने बाहर देखा और गुनगुनाने लगा। जल्द ही वो अपने आसपास के हालात और खतरे को भूल गया।

गया स्टेशन पर 'च' उतरा जैसे कि उसका स्वभाव था, और मूंगफली के दो पैकेट लेकर लौटा। एक पैकेट उसने बारिन को दिया। बारिन ने पूरा पैकेट बहुत स्वाद से खाया।

जब गाड़ी चली तो सूरज ढल चुका था। 'च' ने बत्ती जलाई और पूछा,

"ट्रेन लेट चल रही है? आपकी घड़ी में कितना बजा है?"

बारिन ने पहली बार ध्यान दिया कि 'च' ने घड़ी नहीं पहनी थी। उसे कुछ आश्चर्य हुआ और उसके चेहरे पर भी यह भाव दिखा। फिर उसे 'च' का सवाल याद आया। उसने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखा और 'सात पैंतीस' जवाब दिया।

"फिर तो तकरीबन ठीक ही चल रही है।"

"हां।"

"मेरी घड़ी आज सुबह टूट गई। एच. एम. टी की थी. . . बिल्कुल सही समय दिखाती थी. . . पर आज सुबह किसी ने मेरी चादर इतनी ज़ोर से खींची कि घड़ी ज़मीन पर गिरकर टूट गई और. . . ।"

बारिन ने जवाब नहीं दिया। घड़ियों का कोई भी ज़िक्र उस चोरी का सबूत पेश करने जैसा था।

"आपकी घड़ी कौन-सी है?" 'च' ने पूछा।

"एच. एम. टी.।"

"सही वक्त दिखाती है?"

"हां।"

"दरअसल, घड़ियों के मामले में मैं हमेशा ही बदकिस्मत रहा हूं।" बारिन ने जम्हाई लेने की कोशिश की, सिर्फ यह दिखाने के लिए कि वो खास ध्यान नहीं दे रहा, पर असफल रहा। उसके जबड़े को भी जैसे लकवा मार गया।

वो मुंह भी नहीं खोल पाया, पर उसके कान बखूबी काम करते रहे। 'च' जो कुछ भी कह रहा था उसे सुनना ही पड़ा।

"मेरे पास कभी एक स्विस घड़ी होती थी, सोने की। मेरा एक दोस्त जेनेवा से लाया था। अभी एक ही महीना इस्तेमाल की थी और ट्रेन में साथ ले जा रहा था। ऐसे ही दिल्ली की ट्रेन थी, वातानुकूलित डिब्बा था। हम दो लोग थे – मैं और एक बंगाली आदमी। पता है उसने क्या किया? हिम्मत तो देखो। मेरी गैरमौजूदगी में जब मैं बाथरूम गया होऊंगा – उसने मेरी घड़ी चुरा ली। इतना शरीफ लगता था। पर शायद मेरी खुशकिस्मती थी जो उसने मुझे सोते में मारा नहीं। उसके बाद से मैंने ट्रेन में सफर करना बंद कर दिया। इस बार भी हवाई जहाज़ से ही जाता, लेकिन पाइलट्स की हड़ताल ने सब गड़बड़ कर दिया। "

बारिन भौमिक का गला सूख गया था और हाथ सुन्न पड़ गए थे। पर उसे पता था कि ऐसी घटना सुनने के बाद अगर वो कुछ न कहे, तो अजीब लगेगा। बल्कि, उसे शक भी हो सकता था। बहुत कोशिश कर उसने ज़बरदस्ती कहा, "आप... आपने उसे ढूंढा नहीं?"

"हंह! चुराई गई कोई चीज़ सिर्फ ढूंढने से मिल सकती है? पर काफी

समय तक मैं उस आदमी की शक्ल नहीं भूला। अभी भी धुंधली-सी याद है। वो न तो गोरा था न ही काला, मूंछें थीं और आपके ही जितना लंबा था, पर दुबला था। अगर मैं उसे दुबारा मिला तो ऐसा सबक सिखाऊंगा कि सारी ज़िन्दगी याद रखेगा। मैं एक समय बॉक्सर था – लाइट हैवीवेट चैंपियन। उस आदमी की खुशकिस्मती है कि हम फिर मिले नहीं।"

बारिन को अब उस आदमी का पूरा नाम याद आ गया। चक्रवर्ती। पुलक चक्रवर्ती। अजीब बात है! जैसे ही उसने बॉक्सिंग की बात की, बारिन को उसका नाम ऐसे याद आया जैसे टी. वी. के पर्दे पर कोई नाम हो। पिछली बार पुलक चक्रवर्ती ने अपनी बॉक्सिंग के बारे में काफी बात की थी। लेकिन नाम याद करके भी क्या? चोरी तो उसने की थी। और अब उसका भार उठाना नामुमकिन हो गया था। अगर वो उसे जाकर सब बता दे? और फिर घड़ी लौटा दे तो? जो कि वहीं रखी थी झोले में ... इतनी पास।

नहीं, नहीं। पागल तो नहीं हो रहा कहीं? ऐसा सोच भी कैसे सकता है? वो एक प्रसिद्ध गायक था। वो कैसे मान ले कि उसने इतनी गिरी हुई हरकत की है?

उसके नाम पर बुरा असर नहीं पड़ेगा? उसके चाहने वाले क्या सोचेंगे? और इस बात की क्या गारंटी है कि यह आदमी पत्रकार या मीडिया से संबंधित नहीं है? नहीं, अपनी गलती मानने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। और शायद उसकी कोई ज़रूरत भी नहीं थी। शायद वो उसे यूं ही पहचान लेगा। पुलक चक्रवर्ती उसे अजीब तरह से देख रहा था।

दिल्ली अभी भी सोलह घंटे दूर थी। उसके पकड़े जाने की पूरी-पूरी संभावना थी। बारिन के मन में एक तस्वीर दौड़ गई – उसकी मूंछें वापस आ गई हैं, चेहरा भी दुबला हो गया है, चश्मा गायब हो गया है। पुलक चक्रवर्ती बहुत ध्यान से उस चेहरे को देख रहा था जो उसने नौ साल पहले देखा था। उसकी हल्की भूरी आंखों में जो आश्चर्य था वो धीरे-धीरे गुस्से में बदलता नज़र आ रहा था। उसके मुंह पर एक निर्दयी मुस्कान आ गई थी, मानो कह रहा हो, "आ हा! तुम वही आदमी हो, है न? मैं इतने साल तुम्हें पकड़ने की ताक में था। मैं अब अपना बदला ले पाऊंगा. . . "

रात दस बजे तक बारिन को कंपकंपी के साथ काफी तेज़ बुखार आ गया। उसने अटेंडेंट को बुलाकर एक और कंबल मंगवाया। फिर उसने खुद को सर से पांव तक दोनों कंबलों से ढंक लिया और बिल्कुल सीधा लेट गया। पुलक चक्रवर्ती ने कूपे का दरवाज़ा

बंद किया और लाइट बंद करते हुए बारिन से कहा, "आप शायद ठीक नहीं हैं। मेरे पास एक बहुत अच्छी दवाई है। लो ये दो गोली ले लो। आपको वातानुकूलित डिब्बे में सफर करने की आदत नहीं है, न?"

बारिन ने गोलियां निगल लीं। ऐसी हालत में शायद चक्रवर्ती भी उसे कोई कड़ी सज़ा न दे। पर बारिन ने एक चीज़ तय कर ली थी। उसे वो घड़ी उसके सही हकदार के झोले तक पहुंचानी थी। और अगर हो सके तो आज रात ही यह काम करना था। पर जब तक उसका बुखार न उतरे वो हिल भी नहीं सकता था। अभी भी उसे बीच-बीच में कंपकंपी हो रही थी।

पुलक ने अपने पास की बत्ती जलाई। उसके हाथ में किताब खुली थी। पर क्या वो पढ़ रहा था या सिर्फ उसे घूरते हुए कुछ और सोच रहा था? पन्ना क्यों नहीं पलट रहा था? कुछ पन्ने पढ़ने में कितना समय लगता है?

अचानक बारिन ने देखा कि पुलक अब किताब को नहीं देख रहा। उसने मुंह थोड़ा मोड़ लिया था और वो अब बारिन की तरफ देख रहा था। बारिन ने आंखें मूंद ली। बहुत देर बाद, उसने सावधानी से एक आंख खोली और चक्रवर्ती की ओर देखा। हां, वो अभी भी बारिन को बहुत ध्यान से देख रहा था। बारिन ने झट से आंखें बंद कर लीं। उसका दिल

मेंढ़क की तरह कूद रहा था, पहिए की लय से मेल खाता – लप डप, लप डप, लप डप.....।

एक हल्की आवाज़ आई और उसे लगा कि बत्ती बुझा दी गई है। थोड़ा आश्वस्त होकर उसने दोनों आंखें खोली। दरवाज़े की एक दरार में से बाहर से रोशनी आ रही थी। बारिन ने देखा पुलक चक्रवर्ती अपनी किताब बारिन के झोले के साथ मेज़ पर रख रहा था। फिर उसने कंबल ओढ़ा, बारिन की ओर करवट ली और ज़ोर की जम्हाई ली।

बारिन के दिल की धड़कन धीरे-धीरे ठीक हो गई। हां, कल सुबह वह घड़ी ज़रूर लौटा देगा। उसने देखा पुलक की अटैची में ताला नहीं लगा था। थोड़ी देर पहले ही उसने बदलने के लिए कपड़े निकाले थे।

बारिन का कांपना बंद हो गया। शायद दवा का असर हो रहा था। कौन-सी दवा थी ये? उसने तो यूं ही निगल ली थी कि वो दिल्ली में गा पाए। श्रोताओं की तालियों से तो वो वंचित नहीं रहना चाहता था। पर क्या उसने सही किया? अगर वो गोलियां.... ?

नहीं, नहीं उसे यह सब नहीं सोचना चाहिए। दीवार से गिलास टकराने की घटना ही काफी थी। बेशक, ये सभी अजीब वाकयात सिर्फ उसके बीमार दिमाग की उपज थे। कल, उसे इसका इलाज ढूंढना था। साफ मन के बिना उसकी आवाज़ साफ नहीं हो सकती और उसका कार्यक्रम बिल्कुल असफल हो जाएगा। बंगाली एसोसिएशन....

सुबह चाय के प्यालों के खनकने से बारिन उठ गया। उसके लिए नाश्ता आया: ब्रेड, मक्खन, आमलेट और चाय। ये सब उसे खाना चाहिए क्या? क्या उसे, अभी भी हल्का-सा बुखार नहीं था? नहीं, अब नहीं था। बिल्कुल ठीक लग रहा था। कितनी अच्छी दवाई थी! पुलक चक्रवर्ती के प्रति आभारी था वो।

पर वो है कहां? शायद बाथरूम में। या शायद बाहर दरवाज़े के पास। बारिन ने बाहर जाकर देखा। वहां कोई नहीं था। पुलक कब गया था? क्या उसे मौके का फायदा उठाना चाहिए?

बारिन ने कोशिश की पर सफल नहीं हुआ। घड़ी अपने झोले से निकाली और पुलक की अटैची निकालने के लिए झुका ही था कि उनका हमसफर तौलिया और शेविंग का सामान लेने के लिए अंदर आ गया। बारिन ने घड़ी को दाएं हाथ में छुपा लिया, और सीधा होकर बैठ गया।

"आप कैसे हैं? ठीक हैं?"

"जी, शुक्रिया। अ. . . क्या आप इसे पहचानते हैं?"

बारिन ने मुट्ठी खोली। हाथ में घड़ी थी। उसमें एक अजीब-सी दृढ़ता आ गई थी। वो अपनी पुरानी चोरी की आदत पर तो काबू पा चुका था। पर यह लुका-छुपी का खेल था, यह भी तो एक तरह का धोखा ही है? इतनी टेंशन, इतनी अनिश्चितता, करूं या न करूं की दुविधा, यह पेट में अजीब-सा एहसास, सूखा गला, धक-धक करता दिल, ये सब बीमारी के ही लक्षण थे न? इनसे भी उबरना ज़रूरी था। इसके बिना तो मन की शांति हो ही नहीं सकती थी।

पुलक चक्रवर्ती ने अभी तौलिये से अपने कान साफ करने शुरू किए थे। घड़ी को देखते ही वो वहीं बुत बन गया और उसके हाथ का तौलिया कान पर ही रह गया।

बारिन ने कहा, "हां, मैं वही आदमी हूं। थोड़ा मोटा हो गया हूं, मूंछें मुंडवा दी हैं और चश्मा लगाने लगा हूं। उस समय मैं पटना जा रहा था और आप दिल्ली। यह बात 1964 की है। याद है वो आदमी जो हमारी गाड़ी के नीचे आ गया था? और आप बाहर देखने गए थे? बस आपकी गैरहाज़री में मैंने यह घड़ी ले ली।"

पुलक अब सीधा बारिन की आंखों में देख रहा था। बारिन ने देखा कि उसकी आंखें बड़ी हो रही थीं, मुंह खुला था – जैसे वो कुछ कहना चाह रहा हो, पर आवाज़ नहीं निकल पा रही हो।

बारिन फिर बोला, "दरअसल, मुझे एक बीमारी थी। मतलब मैं चोर नहीं हूं। उसके लिए एक नाम है जो मैं अभी भूल रहा हूं। वैसे अब तो मैं बिल्कुल ठीक हूं। मैंने आपकी यह घड़ी इतने साल इस्तेमाल की है और अब इसे अपने साथ दिल्ली ले जा रहा था। चूंकि आप मिल गए, चमत्कार ही है, तो मैंने सोचा मैं इसे वापस ही कर दूं। मुझे उम्मीद है. . आपको. . . अ. . . मुझसे कोई नाराज़गी तो नहीं है न?"

पुलक चक्रवर्ती हल्के-से 'धन्यवाद' के अलावा कुछ नहीं कह सका। वो अभी भी घड़ी को ही देख रहा था, जो अब उसके हाथ में थी।

बारिन ने अपना टूथब्रश, टूथपेस्ट और शेविंग का सामान उठाया, फिर कील पर टंगा तौलिया उतारा और बाथरूम में चला गया। जैसे ही उसने दरवाज़ा बंद किया वो गुनगुनाने लगा। उसे यह सुनकर खुशी हुई कि उसकी आवाज़ पूरी तरह लौट आई थी।

***

उसे तीन मिनट लगे, एन. सी. भौमिक से संपर्क करने में। फिर एक परिचित आवाज़ उसके कानों में गूंजने लगी।

"हेलो।"

"नीतिश दा? बारिन बोल रहा हूं।"

"अच्छा, तो तुम पहुंच गए? मैं शाम को आ रहा हूं तुम्हें सुनने। तुम भी अब मशहूर हो गए हो, न? किसने सोचा था? खैर, फोन कैसे किया?"

"क्या आप किसी पुलक चक्रवर्ती को जानते हैं? वो कॉलेज में आपके साथ था। बॉक्सिंग करता था।"

"कौन? अपना पिंचू।"

"पिंचू ...?"

"हां, अरे जो दिखता था वो उठा लेता था। पेन, लाइब्रेरी की किताबें, टेनिस के रैकट। उसी ने मेरा पहला रोनसन रैकट चुराया था। अजीब-सी बात है, क्योंकि ऐसा नहीं है कि उसे कोई कमी हो। उसका बाप अमीर आदमी था। उसे किसी तरह की बीमारी थी।"

"बीमारी!"

"हां, तुमने कभी नहीं सुना? इसे क्लेपटोमेनिया कहते हैं।"

बारिन ने फोन नीचे रखा और अपनी खुली अटैची को देखा। वो अभी होटल पहुंचा था और सामान निकालने लगा था। नहीं, इसमें शक नहीं था। कुछ चीज़ें उसमें से गायब थीं। थ्री कासल सिगरेट का पैकेट, जापानी दूरबीन, पांच सौ के नोटों से भरा बटुआ।

क्लेपटोमेनिया – बारिन यह शब्द भूल गया था। अब तो वो उसके दिमाग में उकेरा रहेगा, हमेशा। अब वो उसे कभी नहीं भूलेगा।

सत्यजीत रे: प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक। बच्चों के लिए फिल्म बनाने के अलावा बच्चों के लिए फंतासी और रोमांचकारी साहित्य भी लिखा है।

हिन्दी अनुवाद: शिवानी बजाज: शैक्षिक गतिविधियों में रुचि। शौकिया रूप से अनुवाद करती हैं।

चित्र: विप्लव शशि: बड़ोदरा में चित्रकला का अध्ययन कर रहे हैं।